हाशिए का समाज : आदिवासी समाज की सामाजिक संरचना

डॉ0 विजय कुमार शर्मा, शोध निर्देशक
ऐसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
शासकीय महाविद्यालय, आलमपुर भिंड, मध्य प्रदेश
सम्बद्ध जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर मध्य प्रदेश

सपना पाठक, शोधार्थिनी
नेट, जे0 आर0 एफ0, हिन्दी विभाग
शासकीय महाविद्यालय, आलमपुर भिंड, मध्य प्रदेश
सम्बद्ध जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर मध्य प्रदेश

सारांश–

आदिवासी समाज भारतीय समाज का अभिन्न हिस्सा है। यह अब तक भारतीय समाज की मुख्यधारा से बाहर है, इसलिए अलग प्रतीत होता है बाह्य समाज की अपेक्षा, हेय और वर्चस्व इस अलगाव का कारण बना है। आदिवासी समाज ने इसका हमेशा प्रतिरोध किया है। आदिवासी समाज को हम केवल संवैधानिक व्यवस्था से पहचान नहीं सकते। उसकी अपनी सांस्कृतिक विशिष्टता ही उसकी मूल पहचान है। वर्तमान भारत में सैकड़ों आदिवासी समुदाय हैं जिनकी मुख्य बसाहट पूर्वोत्तर भारत और मध्य भारत में है। कई छोटे–छोटे समुदायों में विभाजित होने के बावजूद आदिवासी समाज की समान सांस्कृतिक बुनावट है। यह समुदाय अपने जीवन की गतिविधियाँ प्रकृति के सान्निध्य में सम्पादित करता है और उससे आत्मीय जुड़ाव रखता है। उनके रीति–रिवाज, संस्कार प्रकृति के सान्निध्य में उसी के निर्देशन में संचालित होते हैं। यह उनका सांस्कृतिक आधार भी है और सामाजिक आर्थिक आधार भी। इसकी अभिव्यक्ति उनकी कथाओं, गाथाओं एवं गीतों में मिलती है। उदाहरण के लिए मुण्डा आदिवासी समुदाय की गाथा 'सोसोबोंगा म' इसकी स्पष्ट अभिव्यक्ति मिलती है।[1]

मुख्य शब्द–आदिवासी समाज,संवैधानिक व्यवस्था,आर्थिक आधार,रीति–रिवाज,संस्कार

*****

आदिवासी साहित्य और साहित्य में आदिवासी को समझने के लिए सबसे पहले आदिवासी समाज की संरचना को समझना पडेगा। नृतत्त्वशास्त्रियों और इतिहासकारों में उनकी स्थिति और उपस्थिति को बाहरी समाज के आक्रमणकारी स्वरूप एवं व्यवस्थाओं के आधार पर रेखांकित किया है। अधिकांश नृतत्त्वशास्त्री यह मानते है कि भारत में आर्यों के आगमन के बाद आदिवासी समाज की संरचना में बदलाव आया। उनका मानना है कि कभी देश के पश्चिम–उत्तर प्रान्त में आदिवासी समुदायों की मूल बसाहट थी, जो आर्यों के आक्रमण एवं दबाब के फलस्वरूप देश के दूसरे विभिन्न हिस्सों में छिन्न–भिन्न होकर कई छोटे छोटे समूहों में विभक्त हो गया। प्रसिद्ध मानवशास्त्री शरदचंद राय ने 'दि मुण्डाज एण्ड देयर कंट्री' में मुण्डा आदिवासी समाज के इतिहास को रेखांकित करते हुए मुण्डाओं के

ISSN2277-3630(online),Published by International journal of Social Sciences & Interdisciplinary Research., under Volume: 11Issue:7inJuly-2022https://www.gejournal.net/index.php/IJSSIR

Copyright (c) 2022 Author (s). This is an open-access article distributed under the terms of Creative Commons Attribution License(CCBY).To viewacopyofthislicense, visithttps://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

अपने मूल स्थान से विस्थापन एवं नये भौगोलिक क्षेत्रों में बसावट की खोज की है। उन्होंने लिखा है कि कालांतर में विस्थापित मुण्डा और उनके समूह भारत के मध्य और दक्षिण भाग में बस गये। वर्तमान में मुण्डा समूहों की उपस्थिति मूलतः झारखण्ड के अतिरिक्त बिहार, उड़ीसा एवं छत्तीसगढ़ तक में है।[2]

आर्यों के आगमन के पश्चात् आर्यीकरण की प्रक्रिया के फलस्वरूप आदिवासी समाज की संस्कृति में बृहद परिवर्तन हुआ। यह न केवल आर्यीकरण से प्रभावित हुआ, बल्कि उसने भी आर्यो को प्रभावित किया। आर्यों के वर्णाश्रम व्यवस्था की स्थापना और उसके प्रसार के फलस्वरूप आदिवासी समाज भी एक जाति के रूप में चिह्नि हुआ लेकिन वह उस व्यवस्था से बाहर ही रखा गया। वर्णाश्रम–व्यवस्था को चार श्रोणियों में आदिवासी शामिल नहीं किये गये। बावजूद उसे उस व्यवस्था की परिधि में रहने को विवश किया गया। आर्यों की उस व्यवस्था के नियंत्रण में रह रहे आदिवासी समाज की सांस्कृतिक बनावट प्रभावित हुई। आर्यों द्वारा विजित आदिवासी निस्संदेह अपनी संस्कृति के मूल आधार (जल, जंगल, जमीन) से वंचित किये गये। परिणामस्वरूप आर्यो की व्यवस्था के अधीन श्रमिक हीं बने रहे और ने वार्णाश्रम व्यवस्था की अस्पृश्यता के शिकार होते रहे। आदिवासियों के ही दूसरे समूह जो इस वर्णाश्रम व्यवस्था के नियंत्रण में नहीं थे, वे दूर वन–प्रान्तों में रहते हुए लगातार संघर्ष करते रहे, इसलिए उनकी सांस्कृतिक बुनावट में अन्तर है। ये संघर्ष करते हुए अपने संसाधनों और संस्कृति के साथ अभिन्न रूप से जुड़े रहे और अपनी स्वायत्त समाज व्यवस्था द्वारा संचालित होते रहे।[3]

पूर्वोत्तर के आदिवासी समुदाय और मध्य भारत में झारखण्ड, उड़ीसा, छत्तीसगढ़, मध्यप्रदश के जंगली भौगोलिक परिवेश के आदिवासी इसके उदाहरण हैं। कालांतर में भारत के इतिहास में परिवर्तनों के प्रभाव से आदिवासी अछूते नहीं रहे। औपनिवेशिक दौर में आदिवासी जीवन पर विकट प्रभाव पड़ा। औपनिवेशिक साम्राज्य से मुक्ति के बाद भी आदिवासी जीवन लगातार आक्रांत किया जाता रहा है। वर्तमान पूंजीवादी समाज के हितों ने आदिवासी समाज को फिर से संघर्ष के मोड़ पर ला खड़ा किया।

आदिवासियों के समाज में आस्थाएं, भाषा और संस्कृति परस्पर कुछ इस प्रकार से अवगुंठित हैं कि वे एक दूसरे पर आश्रित कही जा सकती हैं। आदिवासी समाज स्वयं को किसी ईश्वर या ऋषि मुनि की संतान नही समझता। अपने उद्‌गम के विषय में उसकी सोच अन्य समुदायों से पृथक और तर्कसंगत है। वह स्वयं को कुल के किसी अज्ञात पुरुष (आदिपुरुष) के वंश का विस्तार माल मानता है। आदिवासियों में प्रचलित प्रथाओं और लोकगाथाओं का अवलोकन करें तो स्पष्ट होता है कि उनके समाज में स्वर्ग–नर्क की कोई अवधारणा नहीं है। धरती पर पहले मनुष्य ने प्रकृति के जिस रूप में कोई शक्ति पाई, उसी को वह अच्छी बुरी शक्ति के रूप में मान बैठा। ये आदिवासी ईश्वरवादी तो नही कहे जा सकते, लेकिन वे सबके सब प्रकृतिवादी अवश्य हैं। इनकी सहिष्णुता और संवेदनशीलता का जबाब नहीं है।[4]

सामाजिक संरचना व प्रथाओं के बदलने या उनके त्याग करने का सिलसिला जीवन के अन्य क्षेत्रों में भी चल रहा है। आदिवासियों के परिवारों का स्वरूप बदला रहा है और उन्होंने कई मानवीय प्रथाओं का त्याग कर दिया है। इन सबके कारण आदिवासी समाज आज अपने मूल स्वरूप में नहीं रह गये हैं। सरकारी प्रयासों के कारण आदिवासियों ने अपनी पर्यावरण विरोधी गतिविधियों का भी त्याग कर दिया है। बहुत सी आदिवासी जातियों में झूम कृषि एक परम्परा रहीं है लेकिन आजकल के दौर में सरकारी कोशिशों के बाद आदिवासियों ने इस प्रथा का त्याग कर दिया है।

ISSN2277-3630(online),Published by International journal of Social Sciences & Interdisciplinary Research., under Volume: 11Issue:7inJuly-2022https://www.gejournal.net/index.php/IJSSIR
Copyright (c) 2022 Author (s). This is an open-access article distributed under the terms of Creative Commons Attribution License(CCBY).To viewacopyofthislicense, visithttps://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

आदिवासी समाज की भावनाओं और संवेदनाओं को सदैव कुचला गया है। भौतिकवादी संस्कृति ने इस समाज पर अन्याय ही किया है। इस समाज को शिक्षा से भी वंचित रखा गया है। यह एक तथ्य है कि आदिवासी समाज की जीविका जंगल और जंगल की उपज से जुड़ी हुई है। वे केवल अपने जंगल को पहचानते हैं। इसी कारण गरीबी रेखा और जैव सम्पदा संरक्षण एवं संवर्धन शब्दों से वे अनभिज्ञ हैं।

नेल्सन मण्डेला के शब्दों में– "एक राष्ट्र का मूल्यांकन उसके श्रेष्ठ नागरिकों के साथ व्यवहार के आधार पर नहीं, बल्कि निचले तबके के साथ उसके व्यवहार के आधार पर होना चाहिए।" राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने भी कुछ इसी तरह का विचार और चिंता व्यक्त की– "यदि आप जानना चाहते है कि हमारे देश को किस तरह के विकास की जरूरत है, तो सबसे निचले स्तर और सबसे वंचित व्यक्ति जो गांवों और जंगलों में रहते हैं, उनसे पूछो।"[5]

इसका यह अर्थ नही है कि आदिवासी अपने पारम्परिक ज्ञान और मानवीय मूल्यों से मरहूम हैं और अपने आर्थिक सामाजिक सांस्कृतिक राजनैतिक जीवन में कैसे जिया जाना चाहिए, नहीं जानते हैं। वे प्रकृति और उसके कामकाज को किसी से भी अधिक समझते हैं। वे अपने गांव की भौगोलिक, जलवायु परिस्थितियों को जानते हैं। वे जानवरों और पक्षियों के व्यवहार को देखकर आने वाले मानसून के उतार–चढ़ाव की भविष्यवाणी कर सकते है, वे मिट्टी की प्रकृति को जानते कब और कौन सी फसल उगाना है वे जानते हैं।

आदिवासी गांवों और समुदायों की अखण्डता को सबसे पहले सामन्ती जमींदारी प्रथा ने हानि पहुँचाया, जिसने गाँव समुदाय को करों की जबरन वसूली के लिए प्यादा मात्र बना दिया। बाद में पूँजीपति वर्ग ने अर्थव्यवस्था को नियंत्रण ले लिया तब छोटे कुलीन वर्ग को समग्र महत्त्व दिया गया, जिसके हाथ में पूंजी थी और जिसने उत्पादन की प्रक्रिया को अधिकार में रखा और बाजार को मनुष्य के आर्थिक मूल्य का एक मात्र मापदण्ड बना दिया। आर्थिक नियंत्रण ने देश के सामाजिक और राजनीतिक जीवन को भी नियंत्रित किया। पंचायत प्रणाली और स्वदेशी आदिवासी समुदाय के स्वशासन की उनकी परम्पराओं की परवाह किये बिना सार्वभौमिक रूप से सब पर थोपा गया। यह पारम्परिक गाँव समुदायों के लिए निरूपाय झटका था जिससे अब तक वे उबर नहीं पाये हैं।[6]

भारतीय समाज में आदिवासी समुदायों को उपनिवेश की तरह देखा जाता है। बृहद बहुसंख्यक समाज का आन्तरिक उपनिवेश यह उपनिवेश दो स्तरों पर है– सामाजिक सांस्कृतिक और आर्थिक सामाजिक सांस्कृतिक क्षेत्र में दैत्य या दानव कह कर आदिवासियों का असामाजीकरण किया गया। यह भारतीय समाज में मौजूद ब्राह्मणवादी विचारधारा का परिणाम था। जहाँ एक ओर उन्हें प्राचीन संस्कृत साहित्य में विरूपित किया गया, वहीं औपनिवेशिक काल में अंग्रेजों ने उन्हें 'हेड हन्टर्स' या 'नरमुण्डों' का शिकारी कहा। 'क्रिमिनल ट्राइव' कह उन्हें नागरिकता के दर्जे से नीचे उतार दिया गया। ज्ञान मीमांसा के क्षेत्र में ये ऐसी प्रक्रियाएँ रहीं जिनसे आम लोगों के बीच यह धारणा बनीं कि आदिवासी जंगली, बर्बर और असभ्य होते हैं। संस्कृतिविहीन होना ही उनका रूढ़ परिचय बना दिया गया। आज भी आदिवासी कौन है? यह लोगों के लिए जटिल समस्या है। समाजशास्त्रियों तक के लिए यह समस्या है। जब भी यह सवाल आता है, कहा जाता है कि किसे आदिवासी माना जाए? या किस मानक के आधार पर आदिवासी समाज को परिभाषित किया जाए? पूर्वोत्तर के आदिवासी या मध्य भारत के या दक्षिण के या पश्चिम घाट के? लगभग साढ़े चार सौ प्रकार के आदिवासी समुदाय हैं? संविधान में अनुच्छेद 244(1)

ISSN2277-3630(online),Published by International journal of Social Sciences & Interdisciplinary Research., under Volume: 11Issue:7inJuly-2022https://www.gejournal.net/index.php/IJSSIR
Copyright (c) 2022 Author (s). This is an open-access article distributed under the terms of Creative Commons Attribution License(CCBY).To viewacopyofthislicense, visithttps://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

और अनुच्छेद 244(2) के द्वारा क्रमशः पाँचवी अनुसूची एवं छठी अनुसूची की व्यवस्था दी गयी है। इन अनुसूचियों से सम्बन्धित क्षेत्र आदिवासी क्षेत्र हैं, लेकिन इन अनुच्छेदों के द्वारा अनुसूचित जनजाति क्षेत्रों को परिभाषित किया गया है। ये अनुच्छेद भी आदिवासी समाज को परिभाषित नहीं करते है। क्या यह बिडम्बना नहीं हैं कि एक ही देश के आदिवासी समाज को दो अलग–अलग अनुसूचियों में विभाजित कर अलग–अलग संवैधानिक प्रस्ताव किये गये हैं? देश के संविधान में आदिवासियों को 'आदिवासी' नहीं कहा गया है बल्कि अनुसूचित जनजाति के खाँचे में बन्द कर उनकी पहचान ही छुपा ली गई?[7]

आदिवासी आदिवासी होते है। उनकी अपनी जीवन शैली है, उनका अपना दर्शन, इतिहास, भाषा, साहित्य और चिंतन है, यह विचार स्वीकृत ही नहीं किया गया। आदिवासियों से जुड़े अनुत्तरित सवालों की वजह से नीति निर्णय की प्रक्रिया में आदिवासी हाशिये में ढकेले जाते रहे। उनके लिए कथित विकास की परियोजनाएं असफल होती गयी और वे अस्तित्त्व संकट के शिकार होते गए।

आदिवासी समाज को ज्यादातर आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग के रूप में चिन्हित किया जाता रहा है। आर्थिक पिछड़ेपन के रूप में किये गए अध्ययन ने उनकी अपनी अर्थव्यवस्था और स्वायत्तता और स्वतन्त्रता को समझने का अवसर नहीं दिया। इससे उस प्रक्रिया का भी अध्ययन नहीं किया गया, जिसके तहत आदिवासी समाज को धीरे–धीरे वर्चस्वकारी समूहों ने संसाधन विहीन किया। औपनिवेशीकरण की उस प्रक्रिया का अध्ययन ही नहीं हुआ, जिसके परिणाम स्वरूप आदिवासी समाज गरीबी के अंधेरे में धकेले गये। औपनिवेशीकरण की यह प्रक्रिया सदियों से चलती हुई आजादी के बाद भी निरन्तर चली आ रही है। आज भी 'विकास' के नाम पर आदिवासियों का विस्थापन इसका उदाहरण है। विस्थापन सिर्फ इसलिए त्रासद नहीं है कि इससे आदिवासी समाज की अपनी संस्कृति नष्ट हो जाती है, बल्कि इस लिए भी भयावह हो जाता है कि पहले से मौजूद आदिवासी समाज के उत्पादन के साधनों को और उसकी व्यवस्था को ध्वस्त कर देता है। यह सांस्कृतिक और आर्थिक दोनों तरह से आदिवासी समाज को पंगु बनाता है। आदिवासी समाज की सामाजिक सांस्कृतिक बुनावट की समझ के अभाव के कारण आर्थिक प्रक्रियाओं के नाम पर आदिवासियों का कब्रगाह तैयार हो रहा है। इसी नासमझी के कारण आदिवासियों को कथित मुख्यधारा में जोड़ने की अवधारणा विकसित हुई है। यह अवधारणा हिंसक और श्रेष्ठता बोध से ग्रसित है। यह साजिश की विचारधारा है आदिवासियों को उनके जल, जंगल जमीन से बाहर निकाल कर उनपर कब्जा जमाने की यह उस विचार का प्रतिपक्ष है जिसके तहत यह कहा आ सकता है कि कथित मुख्यधारा में शामिल हुए बिना भी आदिवासी समाज तक वे सारी सुविधाएँ पहुंचाई जा सकती है, जिसको माँग मुख्यधारा करता है।[8]

आदिवासी समाज के लिए सबसे त्रासद बात तो यह है कि दलित और अल्पसंख्यक आदि उत्पीड़ित समुदाय भी आदिवासियों के बारे में उतना ही जानते हैं जितना कि एक सवर्ण या सत्ता समूह का व्यक्ति जानता है। इस तरह की अनभिज्ञता के कारण वर्तमान लोकतन्त्र मे आदिवासी राजनैतिक संकट के शिकार हुए हैं। सामाजिक न्याय की बात करने वाले भी उनकी राजनैतिक आकांक्षाओं से जुड़ नहीं पाये हैं। आदिवासी सांस्कृतिक बुनावट और स्वायत्तता की अधूरी समझ की झलकी उनके राजनैतिक एजेंडों में साफ दिखती हैं। लोकतंत्र में बहुमत की अवधारणा में आदिवासी समुदाय बहुत छोटी इकाई है, वे कमतर हैं। देश के विभिन्न हिस्सों में टुकड़ों में विभाजित आदिवासी समुदाय बहुमत वाली अवधारणा में अपनी भागीदारी कैसे सुनिश्चित कर सकते है? आदिवासी बहुमत की बजाय सर्वमत की अवधारणा पर

ISSN2277-3630(online),Published by International journal of Social Sciences & Interdisciplinary Research., under Volume: 11Issue:7inJuly-2022https://www.gejournal.net/index.php/IJSSIR
Copyright (c) 2022 Author (s). This is an open-access article distributed under the terms of Creative Commons Attribution License(CCBY).To viewacopyofthislicense, visithttps://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

यकीन करते हैं। यह उनको सामूहिकता और सहजीविता के दर्शन का लक्षण है इस बात से बाकी दुनिया अनभिज्ञ है। इसी को ध्यान में रखते हुए संविधान में पांचवी एवं छठी अनुसूची को व्यवस्था की गयी है जो भारतीय लोकतन्त्र में आदिवासी भागीदारी को प्रत्यक्ष रूप से सुनिश्चित करती है। 1996 ई० के पेसा (PESA) अधिनियम ने उसे और अधिक विस्तार दिया। हम देखते हैं कि आदिवासी समाज के मे मुद्दे मुख्यधारा की राजनीति में तो शामिल नहीं होते है, उसके विचार और चिंतन से भी बाहर होते हैं। जब तक आदिवासियों का नरसंहार न हो या विद्रोह के परिणामस्वरूप आदिवासी प्रतिहिंसा हो, शायद ही उनकी तरफ लोगों का ध्यान जाता है। यह भारतीय समाज के लिए दुर्भाग्यपूर्ण है।[9]

भारत में अनुसूचित जनजाति की संख्या दो राज्यों–पंजाब, हरियाणा और संघशासित क्षेत्रों, दिल्ली, चण्डीगढ़ और पाण्डिचेरी को छोड़कर देश के सभी राज्यों तथा केन्द्रशासित प्रदेशों में पायी जाती है। अफ्रीका महाद्वीप के पश्चात् भारत में आदिवासियों की जनसंख्या सबसे ज्यादा है। जनजातीय समाज की जनसंख्या भारत की कुल जनसंख्या का लगभग 8.35 प्रतिशत है, इनमें से लगभग 87ः जनजातीय जनसंख्या केवल मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, उड़ीसा, झारखण्ड, महाराष्ट्र, राजस्थान, आन्ध्र प्रदेश, पश्चिम बंगाल में केन्द्रित है। इसके अतिरिक्त लगभग 10 प्रतिशत जनजातीय समाज पूर्वोत्तर के राज्यों में निवास करती हैं।

भूमध्य प्रजाति के लोग जनजातीय जनसंख्या का प्रमुख भाग हैं तथा इन्हें सामान्यतः द्रविड़ों के रूप में जाना जाता है। द्रविड़ इन लोगों के द्वारा बोली जाने वाली भाषा का नाम है तथा इसका कोई जातीय अर्थ नहीं है। द्रविड़ प्रजाति के अन्तर्गत आने वाली जनजातियों के विषय में माना जाता है कि ये छोटा नागपुर का पठार, राजमहल की पहाड़ियों के क्षेत्रों, अरावली पर्वतमालाओं, मध्य विन्ध्याचलः दक्षिणी पठारी क्षेत्र तथा नीलगिरी की पहाडियों में पाये जाते हैं।

नग्रीटें नामक आदिम जनजाति के विषय में विद्वानों का मत है कि ये भारतीय प्रायद्वीप के प्राचीनतम निवासी हैं। ये लगभग अब लुप्त हो गये हैं। हाँ, अण्डमान–निकोबार द्वीप समूह में आँगे, ग्रेट अंडमानी, सहीनेली एवं जरवा तथा केरल में कादर, इस्लार एवं पणियान के नाम से विद्यमान जनजातियों में अभी भी नग्रीटों प्रजाति के कुछ अवशेष पाये जाते हैं। मंगोल प्रजाति का प्रतिनिधित्व उप हिमालयन क्षेत्र की आदिम जनजातियों के द्वारा किया जाता है। इन्हें दो श्रेणियों में बाँटा जा सकता है, पलायु मंगोली तथा तिब्बती मंगोली पलायु मंगोली के अन्तर्गत असम, मेघालय, मिजोरम, नागालैण्ड एवं मणिपुर में रहने वाली आदिम जनजातियाँ आती हैं, जबकि सिक्किम, अरुणाचल प्रदेश में रहने वाली जातियाँ तिब्बती मंगोली का प्रतिनिधित्व करती हैं। बी० एस० गौड़ ने आदिवासी जनजातियों का भौगोलिक विस्तार तीन मण्डलों में किया है. उत्तरपूर्वी तथा उत्तरमण्डल, केन्द्रीय मण्डल अथवा मध्यमण्डल, दक्षिण मण्डल।"[10]

निष्कर्ष –

अन्त में निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि भारत के ये आदिवासी समयानुसार भले ही अलग–विलग रहे हैं, परन्तु ये लोग भारतीय सभ्यता में संस्कृति और हमारी सोच व सभ्यता में सम्मिलित रहें हैं, इतिहास की प्रमुख धाराओं का इन पर प्रभाव पड़ा है। इन्होंने क्षेत्रिय संस्कृति और आत्मसम्मान को पहचान देकर राज्यों की स्थापना की है और इनके राजवंश चले हैं। देश के कुछ भागों में वे वर्चस्व रखने वाल समुदाय रहे हैं।

ISSN2277-3630(online),Published by International journal of Social Sciences & Interdisciplinary Research., under Volume: 11Issue:7inJuly-2022https://www.gejournal.net/index.php/IJSSIR
Copyright (c) 2022 Author (s). This is an open-access article distributed under the terms of Creative Commons Attribution License(CCBY).To viewacopyofthislicense, visithttps://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

आदिवासी की व्याख्या राष्ट्र में विभिन्न अवसरों पर की जाती रही है तथा दलित विकास के मानदण्डों के मूल्यांकन हेतु अनेक राष्ट्रीय आयोग का गठन किया गया। जिनकी सिफारिशें दर्जनों से कम नहीं है। देश के ख्याति प्राप्त आयोग ढेवर आयोग, रेणुकारे कमेटो, वेरियन एल्विन कमेटी शीलूआओ कमेटी ने आदिवासी विकास पर बौद्धिक कसरतें तो बहुत की, लेकिन इन सिफ़ारिशों पर बहुत कम अमल किया जा सका। संविधान निर्माताओं ने बौद्धिक बहस का लाभ पूरा लिया, किन्तु आदिवासियों को व्याख्या बड़े व्यावहारिक रूप में की है। संविधान ने आदिवासी समूह उन्हें माना है, जिन्हें भारत के राष्ट्रपति किसी भी राज्य के राज्यपाल की सलाह से सार्वजनिक घोषणा द्वारा कुछ समूहों को अपनी अनुसूची में सम्मिलित कर सकता है।

वस्तुतः जिस भूमि की जैसी समस्या का आकलन किया जाये वैसी ही योजना की आवश्यकता होती है, हाँ कम से कम बुनियादी समस्याओं का समाधान होना बहुत ही आवश्यक है। कतिपय ऐसी योजनाओं में पीने का पानी, खाद्य उपलब्धि, वर्ष भर न्यूनतम मजदूरी की उपलब्धता, शिक्षा स्वास्थ्य तथा ग्रामीण स्तर पर सड़कें आदि कुछ ऐसे कार्यक्रम है। जिन्हें उपलब्ध कराना अति आवश्यक है। आदिवासियों को ज्ञान अथाह रहा है, जिसके उपयोग की आवश्यकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. आर्य, कर्मानन्द – 'अस्मितामूलक साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र' द मार्जिमन चाइल्ड पब्लिकेशन इग्नूरोड दिल्ली, पृ0–145. प्रथम संस्करण।
2. वही, पृ0–146.
3. वही, पृ0–147.
4. कुमार, कमलेश– 'आदिवासी विमर्श अवधारणा और आंदोलन' तेज प्रकाशन दरियागंज, नई दिल्ली, पृ0–107.
5. स्वामी स्टेन, 'आदिवासी अस्तित्त्व पर सुनियोजित हमला,' झारखण्ड एक्सप्रेस, सिगडेगा भवन, राँची, पृ0–21.
6. वहीं, पृ0–21–22.
7. तिवारी, विनोद (सं.) लुगुन अनुज (अंसं०) 'पक्षधर" प्रकाशन नवीन शाहदरा दिल्ली पृ0–12.
8. वही पृ0–13.
9. वही पृ0–13.
10. दास डॉ0 शिवतोष – भारतीय जनजातियाँ, पृ0–64.

ISSN2277-3630(online),Published by International journal of Social Sciences & Interdisciplinary Research., under Volume: 11Issue:7inJuly-2022https://www.gejournal.net/index.php/IJSSIR

Copyright (c) 2022 Author (s). This is an open-access article distributed under the terms of Creative Commons Attribution License(CCBY).To viewacopyofthislicense, visithttps://creativecommons.org/licenses/by/4.0/